

शिक्षा या शारीरिक-मानसिक उत्पीड़न ?

• दिनेश कर्नाटक



देखते ही देखते राष्ट्रीय पाठ्यचर्या-2005 तथा शिक्षा का अधिकार अधिनियम ने शिक्षा के प्रति हमारी पुरानी मान्यताओं को बदलकर रख दिया। पहले बस्ते का भारी होना विद्यार्थी के मेहनती होने का लक्षण माना जाता था। अध्यापक-अध्यापिकाएं बच्चों से उनकी सारी किताब-कॉपियों को लाने की मांग करते थे। अब इसे बोझ कहा जाता है। बच्चों का बस्ता भारी न हो इसके लिए प्रत्येक विषय की दो-तीन किताबों की जगह एक किताब कर दी गयी है। पहले पाठ्य सामग्री को रटने पर जोर था। सब कुछ याद करके उगल देने वाले बच्चे को होशियार माना जाता था। अब जोर विषय को समझने पर है। पहले उत्तर तय होते थे। अब प्रश्नों के उत्तर विश्लेषणात्मक अथवा समझ पर आधारित होते हैं। पहले फेल होना स्वाभाविक सी बात थी। अध्यापक कठिन सवालों को पूछकर बच्चों को हैरान करने में यकीन रखते थे। अब बच्चे के फेल होने को शिक्षा व्यवस्था की विफलता माना जाता है। पहले विद्यालय भयभीत करने वाली जगह होती थी। अब इसे आनंदालय बनाने की बात की जाती है। यानी ऐसी जगह जहां जाने पर बच्चे को आनंद की अनुभूति हो-भय की नहीं। पहले पीटना शिक्षक-शिक्षिका की अतिरिक्त योग्यता माना जाता था। बच्चों से इसे प्रसाद के रूप में स्वीकार करने की उम्मीद की जाती थी। मां-बाप शिक्षक-शिक्षिका से अपने बच्चे को पीटने की सिफारिश किया करते थे। अब बच्चों को पीटना हमारी अयोग्यता माना जाता है। यह अपराध की श्रेणी में आ चुका है।

पहले मार-पिट्टाई शिक्षा तथा जीवन के केन्द्र में थी। बच्चों को स्कूल जाते हुए-स्कूल में पढ़ते हुए हर समय पिट्टाई का भय बना रहता था। पिट्टाई को हर मर्ज की दवा मान लिया जाता था। बच्चा या बच्ची स्कूल देर से आती थी तो पिट्टाई। गृह कार्य नहीं किया तो पिट्टाई। जोर से बोल दिया तो पिट्टाई। लड़ाई-झगड़ा कर दिया तो पिट्टाई। घर में पढ़ाई न करने पर पिट्टाई। कहना न मानने। शैतानी करने। समय पर न उठने का इलाज पिट्टाई था। बच्चा घर से बाहर निकलकर समाज में आता तो यहां भी कुछ समाज सेवक बच्चों की बचकानी हरकतों को सुधारने के लिए उनकी पिट्टाई करने को अपना कर्तव्य मानकर चलते थे। यानी बच्चे को हर जगह से पिट्टाई और चेतावनी मिला करती थी।

ऐसा नहीं है कि पिट्टाई को कानूनी रूप से अपराध घोषित कर दिए जाने के बाद से पिट्टाई बंद हो गयी है। बच्चे अभी भी हर रोज घर, स्कूल तथा समाज में पीटे जा रहे हैं। एक ऐसा इंसान जो खुद बचपन में बेमतलब पिट चुका है तथा पिट्टाई जिसके संस्कार का हिस्सा बन चुकी है। उससे एक खास तारीख के बाद यह उम्मीद करना की वह पिट्टाई करना छोड़ देगा। जल्दबाजी ही कही जाएगी। हो सकता है, वह वैचारिक रूप से पिट्टाई की निरर्थकता को समझ चुका हो लेकिन उन संस्कारों का क्या होगा, जो उसकी मांस-मज्जा का हिस्सा हो चुके हैं ?

मनुष्य मारपीट क्यों करता है ? इस सवाल का आसान सा उत्तर होगा-उसने सीखा ही यह है या वह ऐसे ही प्रशिक्षित हुआ है इसलिए मारपीट करता है। पिट्टाई या हिंसा दरअसल

अचानक सामने आकर खड़ी हो गई समस्या का जवाब होती है। एक ऐसा तैयार जवाब जिसके लिए न तो दिमाग पर जोर देने की जरूरत होती है। न किसी तरह का उपाय करने की। इस समस्या का संबंध हमारे सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक ढांचे में है। हम एकाएक सामने आने वाली चुनौती को स्वीकार कर उसके समाधान के लिए मेहनत नहीं करना चाहते। हम समस्या को नजरअंदाज या स्थगित करके उसे सामने वाले को वापस लौटा देने के आदी रहे हैं। जब सामने वाला आसानी से इसे स्वीकार नहीं करता तो ऊंचा बोलकर या मार-पिट्टाई कर उससे किनारा कर लेते हैं। चीजों अथवा घटनाओं के हमारी सोच अथवा सुविधा के अनुसार घटित न होने पर भी हम मारपीट की दिशा की ओर बढ़ चलते हैं।

बच्चों द्वारा उठाए गए सवाल जिसे हम समस्या या परेशानी समझते हैं दरअसल मां-बाप, शिक्षक, समाज तथा विद्यालय के लिए बच्चों द्वारा पेश की गयी चुनौती है। बच्चा बार-बार कहने पर भी यदि कोई काम नहीं कर पा रहा है तो उसे पीटने से शिक्षक केवल अपना गुस्सा प्रकट कर सकता है। इससे समाधान नहीं निकलेगा। उल्टे भविष्य के लिए एक गलत बीज बो दिया जाएगा। समाधान के लिए हमें सहृदयता से उसे सुनना होगा। भरोसे तथा विश्वास का ऐसा संबंध बनाना होगा कि बच्चा सहजता से अपनी कठिनाइयों को हमारे साथ साझा कर सके। तब उसकी समस्याओं के विभिन्न पक्षों पर बात कर समस्या का समाधान निकाला जा सकेगा।

मगर हम समस्याओं से जूझने तथा उनका समाधान निकालने वाले लोग नहीं हैं। हम समस्याओं को दबाने या उनसे मुंह फेरकर आगे निकलने में निपुण लोग हैं। इसलिए हमारे आस-पास सुलझने को आतुर समस्याओं के अंबार हैं। हम समस्याओं से तत्काल निपटने के बजाय उन्हें तब तक स्थगित करते जाते हैं, जब तक कि उनसे हमारा दम न घुटने लग जाए। कोर्ट में जाइए न जाने कितने मुकदमे समाधान को तरसते हुए मिल जाएंगे। ऑफिसों में जाइए न जाने कितनी फाइलें अपनी बारी के इंतजार में लाईन में खड़ी नजर आ जाएंगी। फिर एक दिन अचानक एक युगपुरुष अवतरित होगा जो हमें बताएगा कि भ्रष्टाचार बहुत बढ़ चुका है। अब हमें भ्रष्टाचार मुक्त भारत बनाना होगा। गंदगी बहुत हो चुकी है। अब हमें 'स्वच्छ भारत अभियान' चलाना होगा। हमें भी लगता है युगपुरुष कह तो सही रहा है और हम समस्या के खिलाफ नारे लगाने लगते हैं।

हम धारणाओं के आधार पर जीने वाले लोग हैं। हमने कुछ बातें मान ली हैं और हम उनके पार नहीं जाना चाहते। जैसे विद्यार्थी को भय नहीं होगा तो वह पढ़ाई को गंभीरता से नहीं लेगा। विद्यालय तथा शिक्षकों का सम्मान नहीं करेगा। भय नहीं होगा तो अराजक हो जाएगा। जो मन में आएगा वैसा करने लगेगा। अनुशासन नहीं रह जाएगा। आश्चर्य तो तब होता है जब कई समझदार नजर आने वाले लोग भी ऐसी बातें करते हुए नजर आते हैं। ये धारणाएं सामंती मनोवृत्ति तथा जड़ता की प्रतीक हैं। जहां यथास्थिति को बनाए रखने के लिए लोगों के मुंह को बंद रखना जरूरी समझा जाता है। जहां तर्क तथा वाद-प्रतिवाद पर यकीन नहीं रखा जाता।

लोकतांत्रिक तथा प्रगतिशील समाज में ऐसी धारणाओं के

लिए कोई जगह नहीं हो सकती। यहां बच्चा पढ़ाई में रुचि भय के कारण नहीं, बल्कि तब लेगा जब वह उसे आनंद देने वाली तथा उपयोगी लगेगी। वह विद्यालय तथा शिक्षकों का सम्मान तभी करेगा, जब वे भी उसका सम्मान कर रहे होंगे तथा अपना दायित्व पूरी संवेदनशीलता तथा निष्ठा से निभा रहे होंगे। तब सम्मान का दिखावा नहीं होगा। वह वास्तविक होगा। आज जिसे हम सम्मान समझते हैं, वह सम्मान नहीं, एक भ्रम है। जिसे सब ढोये चले जा रहे हैं। अनुशासन की जरूरत भी वहीं होती है, जहां की व्यवस्था व्यवस्थित तथा सुचारु रूप से नहीं चलती। जहां अराजकता होती है। अपनी नाकामी को छिपाने के लिए ऐसी जगहों में 'सब ठीक है' का भ्रम पैदा करने के लिए दिखावटी अनुशासन कायम किया जाता है।

इस नतीजे पर पहुंचने के बाद हम किसी भी तरह की हिंसा को जायज नहीं ठहरा सकते। चाहे वह कितने ही महान विचार के आधार पर हो या धर्म अथवा राष्ट्र के नाम पर ही क्यों न हो ! हमें यह मानना पड़ेगा कि अहिंसा उन्नत समझ की निशानी है तथा हिंसा पिछड़े हुए समाजों की निशानी है। अगर हम किसी प्रकार की हिंसा को जायज ठहराने लगे तो हम मनुष्यता की ऊंचाइयों की ओर बढ़ने की संभावनाओं को ध्वस्त करेंगे। हमें याद रखना होगा कि चन्द्रशेखर आजाद, भगत सिंह तथा सुभाष चंद्र बोस ने भी बाद में यह स्वीकार किया था कि हिंसा से हम कोई बहुत बड़ा बदलाव नहीं ला सकते। एक समय क्रांतिकारी रहे तथा बाद में हिन्दी के युगप्रवर्तक कवि, कहानीकार, उपन्यासकार अज्ञेय ने लिखा है—'चार वर्ष जेल में और वर्ष भर नजरबंदी में बिताकर जब मुक्त हुआ तब यह नहीं कि क्रांति का उत्साह ठंडा पड़ चुका था, पर आतंकवाद और गुप्त आंदोलन अवश्य पीछे छूट गये थे और हिंसा की उपयोगिता पर अनेक प्रश्नचिह्न लग चुके थे।'

मार-पिट्टाई के संबंध में जितने तर्क दिये जाते हैं, अगर हम उन्हें अपने अनुभव की कसौटी पर कसें तो समझ में आता है कि हम इसलिए पढ़ पाए क्योंकि पढ़ना हमें अपनी जरूरत लगने लगा था। क्योंकि हमें समझ में आ गया था कि पढ़ना जीने के लिए आवश्यक है। मार-पिट्टाई को देखकर तो यही लगता था कि इसकी कोई जरूरत नहीं है। अगर हमें अपनेपन से पढ़ाया जाता तो अच्छा होता। इस आलेख के आरंभ में हमने शिक्षा में नई सोच की जो बातें कही थी। उन्हें राज्य तथा केंद्र के सरकारी विद्यालयों में तो अपनाया जा रहा है, लेकिन निजी विद्यालयों में उल्टी गंगा बह रही है। वहां बस्ते का बोझ कम नहीं हुआ है। धड़ल्ले से एक विषय के लिए कई-कई किताबें खरीदवाई जा रही हैं। बच्चों को उस भाषा में शिक्षा लेनी पड़ रही है जो उनके परिवेश की नहीं है। अतः वे प्रश्नों के उत्तर रटने को विवश हैं। कहा जाता है, शारीरिक उत्पीड़न से भी बुरा मानसिक उत्पीड़न होता है। निजी स्कूलों के बच्चे हर रोज इस मानसिक उत्पीड़न को झेलने को अभिशप्त हैं। निजी स्कूल बच्चों तथा देश के भविष्य के लिए समस्या बनते जा रहे हैं। लेकिन कब हम इस समस्या से निपटने के बारे में सोचेंगे। शायद तब जब कोई युगपुरुष आकर हमें समझाएगा ? तब तक के लिए हमें इंतजार करना होगा ?

Mob.: +91- 94117931980

E-mail: dineshkarnatak12@gmail.com

शैक्षिक दखल // 48